"श्रीमद्भागवत पुराण में पर्यावरण संरक्षण"

*घनश्याम लोटन

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध–पत्र 'श्रीमद्भागवत पुराण में पर्यावरण' संरक्षण में भागवत पुराण के अन्तर्गत पर्यावरण के प्रति धारणा का विश्लेषण करके पर्यावरण घटक तत्वों का वर्णन करते हुए भागवत में वर्णित परमपरागत संस्कार, व्रत, अनुष्ठान पूजा पद्धति, पर्यावरण–संरक्षण की व्यापक चेतना अंतनिर्हित हैं। सभी प्राणियों की रक्षा की सीख के साथ। भागवत पुरण विशद् रूप से पर्यावरण के बारे में बताता हैं। साथ ही अनेक कथाओं व प्रसंग के माध्यम से पर्यावरण का ज्ञान प्रदान करता है। पुराण पर श्रेष्ठ कार्य करने वाले विद्वानों तथा गीत, प्रेस, गोरखपुर प्रकाशन का सहयोग लिया गया है।

कुंजी शब्द

श्रीमद्भागवत् महापुराण, पर्यावरण, श्रीकृष्ण मानव, संरक्षण।

प्रस्तावना

"वायु, जल, भूमि, वनस्पति, पेड़–पौधे, पशु, मानव सब मिलाकर पर्यावरण बनाते है। प्रकृति में इन सबकी मात्रा और इनकी रचना कुछ इस प्रकार से व्यवस्थित है कि पृथ्वी पर एक सन्तुलनमय जीवन चलता रहे। विगत करोड़ो वर्षों से जब से पृथ्वी पर मनुष्य, पशु–पक्षी और अन्य जी वन और जीवाणु उपभोक्ता बनकर आये तब से, प्रकृति का यह चक्र निरन्तर और अबाध गति से चला आ रहा है। जिसको जितनी आवश्यकता है वह उन्हें मिलता रहता है और प्रकृति आगे के लिए अपने में और उत्पन्न करके और संरक्षित कर लेती है।"[1]

पुराणों में पर्यावरण ज्ञान का अथाह खजाना भरा हुआ है। 18 महापुराणों में श्रीमद्भगवत पुराण का विशेष महत्व हैं। **आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार**, "भागवत प×चलक्षण के वृहद्रूप दश लक्षणों से समन्वित एक महनीय आध्यात्मिक पुराण है, जिसमें भूगोल तथा खगोल, वंश और वंशानुचरित का भी विवरण संक्षेप में उपस्थित किया गया है। श्रीकृष्ण के भगवान रूप में चित्रित करने तथा उनकी ललित लीलाओं का विवरण देने में भागवत् अद्वितीय पुराण हैं।"[2]

आचार्य बलदेव उपाध्याय पुराण का रचनाकाल छठीं शताब्दी ..... मानते हैं। श्रीमद् भागवत महापुरराण वैष्णव सम्प्रदाय का प्रमुख पुराण है। राधावल्लभ त्रिपाठी के अनुसार "भागवत पुराण में बारह स्कंध, 335

अध्याय तथा 18,000 श्लोक है। पंचम स्कंध का गद्य अत्यन्त प्रांजल और प्रौढ़ है तथा इस स्कंध में भारत देश की मनोहारी छवि का सरस चित्रण है। यह वैष्णव पुराण है। वैष्णव धर्म के अनुयायी इसे पाँचवा वेद ही मानते हैं।"[3]

पर्यावरणीय बोध को जन–जन तक पहुंचाने के लिए धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था सर्वाधिक सशक्त रहा है। भागवत में वर्णित परम्परागत संस्कार, व्रत, अनुष्ठान, पूजा पद्धति, विविध पर्व एवं नृत्य गीतादि लोकगीतन की समस्त क्रियाओं में पर्यावरण संरक्षण की व्यापक चेतना अंतनिर्हित हैं। पर्यावरण का धर्म के मूल तत्वों का पर्याप्त सामंजस्य भागवत् में स्थापित किया गया है। आचार संहिता में पर्यावरण संरक्षण की महत्त का उद्घोष मिलता है। भागवत पुराण तो मानव को प्राकृतिक तत्वों व अतयधिक निकट लाने का प्रयास किया है। क्योंकि वे जानते थे कि मानव जब भूमि, जलवायु अथवा वनों से जुड़ते है तो वह समग्र अस्तित्व से जुड़ते हैं। वर्तमान में कोविड–19 जो महामारी आयी है ये पर्यावरण की उपेक्षा तथा उसके असन्तुलित उपभोग के कारण ही है।

नदी, सागर, पर्वत, वन, वृक्ष, पशु–पक्षी, जल, भूमि तथा सौर परिवार का महत्व प्रतिपादित किया गया हैं। अतः मेरे शोध पत्र 'श्रीमद्भागवत पुराण में पर्यावरण संरक्षण' के स्वरूप, उसकी महत्ता, संरक्षण व उपाय के बारे में बताया जाएगा जो वर्तमान में भी अति आवश्यक है।

श्रीमद् भागवत पुराण में पर्यावरण संरक्षण :

पुराणों के समय वैश्विक कल्याण तथा ब्राह्माण्ड के संरक्षण की भावना सर्वोपारि थी। पर्यावरण का मानव से संबंध केवल उपभोगवादी नहीं था, प्रत्युत सहयोगवादी व संरचनात्मक भी रहा है। मानव संवेदना को आचरणात्मक बनाकर संसाधनों का उपयोग करता हुआ दृष्टिगोचर होता हैं, क्योंकि वे जानते थे कि मानवीय क्रियाकलापों तथा प्राकृतिक परिस्थितियों के मध्य सन्तुलन होने पर ही सृष्टि सुचारू रूप से चलेगी।

श्रीमद्भागवत् पुराण में तुलसी पौधे की महत्ता प्रतिपादित की गई है उसके औषधीय गुण तथा पर्यावरणीय महत्व के कारण श्रीमद्भागवत महापुराण से कहा गया है :–

"मन्दारकुन्दकुरबोत्पलचम्प कार्ण
पुन्नागनागबकुलाम्बुजपारिजाताः।
गन्धेऽर्चितैः तुलसिकाभरणेन तस्या
यस्मिंस्तपषः सुमनसो बहु मानयन्ति।।

अर्थात् – श्रीहरि तुलसी से अपने श्री विग्रह को सजाते है और तुलसी की गन्ध का ही अधिक आदर करते है – यह देखकर वहाँ के मन्दार, कुन्द, कुरबक (तिलक वृक्ष), उत्पल (रात्रि में मिलने वाले कमल), चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नागकेसर, बकुल (मौलसिरी), अम्बुज (दिन में खिलने वाले कमल) और पारिजात आदि पुष्प सुगन्ध युक्त होने पर भी तुलसी का ही तप अधिक जानते हैं।"[4]

पुराणों के लेखक वेदव्यास जी ने प्रकृति गत उपमादों को भगवान के शरीर का सानिध्य प्रदान कर विशिष्ट गौरव प्रदान किया हैं। जो हमें श्रीमद्भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध के अध्याय 15वें में श्लोक संख्या 44 में मिलता है।

"ते वा अनुष्य वद्नासितपद्मकोश
मुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम्।
लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्.घ्रि
द्वन्द्वं नखारूणमजिश्रयणं निदध्युः।।

अर्थात् – भगवान का मुख नील कमल के समान था, अतिसुन्दर अधर और कुन्दकली के समान मनोहर हास से उसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। उसकी झांकी करके वे कृतकृत्य हो गये और फिर पद्मराग के समान लाल–लाल नखों से सुशोभित उनके चरण–कमल देखकर वे उन्हीं का ध्यान करने लगे।[5]

"अष्टौ प्रकृतमयः प्रोक्तास्मय एंव हि तद् गुणाः।
विकाराः षोडशाचार्येः पुमानेकः समन्वयात्।।

अर्थात् – आचार्यों ने मूल प्रकृति, महत्व, अहंकार और पंचतमात्राएँ इन आठ तत्वों को प्रकृति बतलाया है। उनके तीन गुण है – सत्त्व, इन और तम तथा उनके विकार है सोलह – दस इन्द्रियाँ, एक मन और पंचमहाभूत। इन सबमें एक पुरूषतत्व अनुगत हैं।"[6]

पर्यावरण तत्व कही–कही मानव की भावभूमि से युक्त चित्रित किये गये है। कृष्ण की बांसुरी को सुनकर वृक्ष भी अश्रु बहाते हैं –

"गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्मवेणु –
दार्मोदराधसुधमध्गिोधिकनाम्।
मुड्.क्ते स्वयं यदववशिष्टरसं हृदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्चाः।।

अर्थात् – अरी गोपियोः यह वेणु पुरूष जाति का होने पर भी पूर्व जन्म में न जाने ऐसा कौनसा साधन भजन कर चुका है कि हम गोपियों की अपनी सम्पत्ति–दामोदर के अधरों की सुधा स्वयं की इस प्रकार जिये जा रहे है कि हम लोगों के थोड़ासा भी रस शेष नहीं रहेगा। इस वेणु को अपने रस से सीचनेवाली हृदितियाँ आज कमलों के मिस रोमान्वित हो रही है और अपने वंश में भगवतप्रेमी सन्तानों को देखकर श्रेष्ठ पुरूषों के समान वृक्ष भी इसके साथ अपना संबंध जोड़कर आँखेां से आनन्दाश्रु बहा रहे हैं।"[7]

भगवान कृष्ण को धूप सुरक्षा के लिए बादल अपने शरीर को ही छाता बनाकर तान देते है और सर्वस्व अर्पित करते है –

"दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजयशून सह रामगोपेः
संचारयन्तमनु वेणमदीरयन्तम्।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमाबलीभिः
सख्युर्व्यधान् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम्।।

अर्थात् – अरी सखी! ये नदियाँ तो हमारी पृथ्वी की, हमारे वृन्दावन की वस्तुएँ है, तनिक इन बादलों को भी देखो, जब वे देखते है कि व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण और बलराम जी ग्वालबालों के साथ धूप में गौएँ चरा रहे है ओर साथ–साथ बांसुरी भी बजाते आ रहे है तब उनके हृदय से प्रेम उमड़ आता है। वे उनके

ऊपर मंडराने लगते है और वे श्यामघन अपने सखा घनश्याम के ऊपर अपने शरीर को ही छाता बनाकर तान देते है। इतना हीन हीं सखी! वे जब उन पर नन्हीं–नन्हीं फुहियों की वर्षा करने लगते है तब ऐसा जान पड़ता है कि वे उनके ऊपर सुन्दर–सुन्दर श्वेत कुसुम चढ़ा रहे है। नहीं सखी, उनके बहाने वे तो अपना जीवन ही निछावर कर देते है।"[8]

नदी का भगवान कृष्ण के सामिप्य का असर वर्णन करते हुए पुराणकार करते है :

"नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत –
मावर्तलक्षितमनोभावभ्ग्नवेगाः।
आलिंगन स्थगित मूर्मिभुजैर्मुरारे
गृह्णन्तिपादयुगलं कमलोपद्धाराः।

अर्थात् – अरी सखी! देवता, गौओं और पक्षियों की बात क्यों करती हो, वे तो चेतन है। इन जड़ नदियों को नहीं देखती? इसमें जो भंवर दिख रहे है, उनसे इनके हृदय में श्यामसुन्दर से मिलने की तीव्र आकांक्षा का पता चलता है। उसके वेग से ही तो इनका प्रवाह रूक गया है। इन्होंने भी प्रेमस्वरूप श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि सुन ली है। देखो–देखो! ये अपनी तरंगों के हाथों से उनके चरण पकड़कर कमल के फूलों का उपहार चढ़ा रही है और उनका आलिंगन कर रही है। मानो उनके चरणों पर अपना हृदय ही निछावर कर रही हैं।"[9]

इस प्रकार हर्ष, विलाद, सुख–दुःखादि भावों से ओतप्रोत प्रकृति मानव की सच्ची सहचरी हैं।

भागवतकार प्रकृति में परमतत्व के दर्शन करते है। पृथ्वी, पर्वत, नदियाँ, नक्षत्र, वृक्ष व समस्त प्राणी ये सब विराट पुरूष के अंग ही है।

"अन्येच विविध जीवा जलस्थलनभौकसः।
ग्रर्ध्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनचित्नवः।।
सर्व पुरूष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत्।
तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति।।

अर्थात् – वृक्ष और नाना प्रकार के जीव जो आकाश, जल या स्थल में रहते है – ग्रह – नक्षत्र, केतु (पुच्छल तारे) तारे, बिजली और बादल ये सबके सब विराट् पुरूष है। यह सम्पूर्ण विश्व जो कुछ कभी था, है या होगा – सबको वह घेरे हुए है और उसके सुन्दर यह विश्व उसके केवल दसं अंगुल के परिमाण में ही स्थित है।"[10]

पूजा अर्चना तथा तीर्थ–सेवन आदि का भी उद्देश्य यही है कि व्यक्ति चराचर जगत में आत्मा रूप में स्थित उस भगवान का ही दर्शन करें।

"देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्थर्शनार्चनैः।
शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षण।।

अर्थात् – देवता, पुण्यक्षेत्र और तीर्थ आदि तो दर्शन, स्पर्श, अर्चन आदि के द्वारा धीरे–धीरे बहुत दिनों में पवित्र करते है, परन्तु संत पुरूष अपनी दृष्टि से ही सबको पवित्र कर देते है। यही नहीं देवता आदि में

जो पवित्र करने की शक्ति है, वह भी उन्हें संतों की दृष्टि से ही प्राप्त होती हैं।"[11]

समुद्र में रसायन, औषधीय द्रव्य, ऊर्जा धातुएँ सभी कुछ निहित है, फिर भी उसका भाव अथाह, अपास्त असीम है। प्रत्येक परिस्थिति में वह सर्वदा प्रसन्न व गंभीर है। मानव को उससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

"मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरव्ययः।
अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितमोद इवार्णवः।।

अर्थात् – समुद्र से मैंने यह सीखा है कि साधक को सर्वदा प्रसन्न और गंभीर होना चाहिए, उसका भाव अथाह, अपार और असीम होना चाहिए तथा किसी भी निमित्त से उसे क्षोभ नहीं होना चाहिए। उसे ठीक वैसे ही रहना चाहिए, जैसे ज्वारभाटे और तरंगों से रहित शान्त समुद्र।"[12]

पृथ्वी पर एक निश्चित पर्यावरण बनाये रखने में सौर–परिवार का महत्वपूर्ण योगदान होता है। पृथ्वी की परिक्रमा करने के कारण भी सूर्य महत्वपूर्ण पर्यावरणीय प्रकार्यों से सम्बद्ध है।

"यथैव सूर्यात्प्रभवन्ति वारः
पुनश्च तस्मिन् प्रतिशन्ति काले।
भूतानि भूमौ स्थिरजंगमाति
तथा हरावेव गुणप्रवाहः।।

अर्थात् – जिस प्रकार वर्षाकाल में जल सूर्य के ताप से उत्पन्न होता है और ग्रीष्म ऋतु में उसी की किरणों में पुनः प्रवेश कर जाता है तथा जैसे समस्त चराचर भूत पृथ्वी के उत्पन्न होते है और फिर उसी में मिल जाते है, उसी प्रकार चेतना–चेतनात्मक यह समस्त प्रपंच श्री हरि से ही उत्पन्न होता है और उन्हीं में ली हो जाता है।[13]

"सूर्येण हि विभन्यन्ते दिशः खंधौमही भिदा।
स्वर्मापवर्गो नरका रसौकांसि च सर्वराः।।

अर्थात् – सूर्य के द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक (अन्तरिक्ष लोक) भूलोक, स्वर्ग और मोक्ष के प्रदेश नरक और रसातल तथा अन्य समस्त भागों का विभाग होता है।"[14]

पर्यावरण शोधन की दृष्टि से चातुर्मास्य – यज्ञ विधान की परम्परा का उल्लेख भी भागवत में मिलता है। वर्ष पर्यन्त ऋतु के अनुसार यज्ञ करने के पीछे यही उद्देश्य था कि एक ऋतु से अन्य ऋतु में संक्रमणकाल में पर्यावरण में व्याप्त जीवाणुओं तथा अन्य विकारों को समाप्त किया जा सके, जिससे पर्यावरण अनुकूल बना रहे। वृक्ष वनस्पतियाँ पूज्य भी है और पूजन सामग्री भी है।

"अग्निरूवाच
यत्तेजसाहं सुसमिद्धतेजा
दृव्यंवहे स्वध्वर आज्यसिक्तम।
तं यज्ञियं पंचविधं च पंचभिः।
स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोऽस्मियज्ञम्।।

अर्थात् – अग्निदेव ने कहा – भगवन! आपके ही तेज से प्रज्जवलित होकर मैं श्रेष्ठ यज्ञों में देवताओं के पास धृतमिश्रित ..... पहुँचाता हूँ। आप साक्षात् यज्ञपुरूष एवं यज्ञ की रक्षा करने वाले है। अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य और पशु–सोम ये पाँच प्रकार के यज्ञ आपके ही स्वरूप है तथा 'आश्रावच' 'अस्तुश्रोषद्, 'यजे' 'ये यजामहे' और 'वषद्' – इन पाँच प्रकार के यजुर्मन्त्रों से आपका ही पूजन होता है। मैं आपको प्रमाण करता हूँ।[15]

पर्यावरण बोध को जन–जन तक पहुंचाने के लिए सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भागवत पुराण में वर्णित परम्परागत संस्कार, व्रत, अनुष्ठान, पूजा पद्धति, विविध पर्व एवं नृत्यगीत आदि लोक जीवन की समस्त क्रियाओं में पर्यावरण–संरक्षण की व्यापक चेतना अंतनिर्हत है। पर्यावरण तथा धर्म के मूल तत्वों का पर्याप्त सामंजस्य भागवत मे स्थापित किया गया है। मानवता का सही अर्थ परिलक्षित होता है।

"ब्राह्मणाजातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे।

यत्कृत्वा साधु में भूयादधर्मो वान माँ स्पृशेत।।

अर्थात् – उन्होंने कहा – ब्राह्मणं – देवताओं। ब्राह्मण को बिना भोजन कराये स्वयं खा लेना और द्वादशी रहते पारण न करना – दोनों ही दोष है। इसलिए इस समय जैसा करने से मेरी भलाई हो और मुझे पाप न लगे, ऐसा काम करना चाहिए।"[16]

"द्वादश्यामेकादश्यां वा श्रृणवन्नयायुष्यावान् भवेत्।

पद्धत्यनश्नन् प्रयतस्वतो भवतयपात की।।

अर्थात् – जो पुरूष द्वादशी अथवा एकादशी के दिन इसका श्रवण करता है, वह दीर्घायु हो जाता है और जो संयमपूर्वक निराधार रहकर पाठ करता हे, उसके पहले के पाप तो नष्ट हो ही जाते है, पाप की प्रवृत्ति भी नष्ट हो जाता है।"[17]

पशु–पक्षियों, कीट–पतंगों आदि का महत्व भी भागवत में प्रतिपादित होता है –

"मृगोष्ट्रखरमकखिुसरीसृप्खगमक्षिकाः।

आत्मनः पुत्रवत् पश्चेत्तैरेषामन्तरं कियत्।।

अर्थात् – हरिन, ऊँट, गधा, बन्दर, चूहा, सरीसृप (रेंगकर चलने वाले प्राणी), पक्षी और मक्खी आदि का अपने पुत्र के समान ही समझे। उनमें और पुत्रों में अन्तर ही कितना है।"[18]

"सूर्योऽग्निब्राह्मणो गावो वेष्णवः खं मरूज्जलम्!
भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि ये।।
सूर्य तु विद्यया ऋच्चा हविषाग्नौ यजेत माम्।
आतिथ्येन तु विप्राग्रये गोष्वंग यवसादिना।।

अर्थात् – भद्रः सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु जल, पृथ्वी, आत्मा और समस्त प्राणी – ये सब मेरी पूजा के स्थान है।। प्यारे उद्धव। ऋग्वेद, यजुर्वेद अरि सामवेद के मंत्रों द्वारा सूर्य में मेरी पूजन

करनी चाहिए। हवन के द्वारा अग्नि में, आतिथ्य द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण में और हरी–हरी घास आदि के द्वारा गौ में मेरी पूजा करें।"[19]

पर्यावरण हमारी संस्कृति का स्रोत है। अतः पर्यावरण की समस्या मूलतः संस्कृति की समस्या हैं। अपनी आवश्यकता के अनुसार ही ग्रहण करें। भागवतकारक के अनुसार सभी प्राणियों के प्रति दया, मैत्री रखते हुए अपने काम करते हुए प्राकृतिक जीवों से शिक्षा ग्रहण करते हुए मानव पर्यावरण संबंधी समस्याओं से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

"यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।।

अर्थात् – मनुष्यों का अधिकार उतने ही धन पर है, जितने से उनके दुःख मिट जाए। इससे अधिक सम्पत्ति को जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिए।"[20]

"तितिक्षया करूणया मै=या चाखिलजन्तुषु।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् समप्रसीदति।।

अर्थात् – सर्वात्मा श्रीहरि तो अपने से बड़े पुरूषों के प्रति सहनशीलता, छोटो के प्रति दया बराबरवालों के साथ मित्रता और समस्त जीवों के साथ समता का बर्ताव करने से ही प्रसन्न होते हैं।"[21]

"सर्वतो मनसोऽसंगमादौ संगं च साधुषु।
दयां मैत्रीं प्रक्षयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्।।

अर्थात् – पहले शरीर, संतान आदि में मन की अनासक्ति सीखे। फिर भगवान के भक्तों से प्रेम कैसा करना चाहिए – यह सीखे। इसके पश्चात् प्राणियों के प्रति यथायोग्य दया, मैत्री और विनय निष्कपट भाव से शिक्षा ग्रहण करें।[22]

निष्कर्ष

पर्यावरण के घटक पशु, पक्षी, पेड़, पौधे, वन, मानव, भूमि–जल, जीव, जन्तु, ब्रह्माण्ड, सौर परिवार आदि पर्यावरण के विशद् रूप का वर्णन भागवत पुराण में मिलता है भागवत पुराण में इनके संरक्षण के लिए सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था को सर्वोत्तम माना है क्योंकि मनुष्य इन दोनों के वशीभूत हैं। साथ ही सभी प्राणियों के प्रति दया, मैत्रीभाव रखते हुए अपने कर्मों को करते हुए मानव पर्यावरण संबंधी समस्याओं का समाधान कर सकता है जो कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी लागू होता है। यदि विश्व के देश वसुदैवकुटुम्बकम्, अपनी आवश्यकतानुसार ग्रहण करना, जनसंख्या वृद्धि पर रोक, प्राकृतिक पदार्थों का समुचित प्रयोग तथा निरन्तर उनकी वृद्धि का प्रयास करें तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में श्री श्रीमद् भागवत् की पर्यावरण संरक्षण दृष्टि अति उत्तम हैं।

***शोधार्थी**
भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोयल, डॉ. एम.के. : पर्यावरण शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2, द्वितीय संस्करण, 2003, पृ.1
2. उपाध्याय, आचार्य बलदेव : पुराण–विमर्श, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1978, पृ.546.
3. त्रिपाठी, डॉ. राधावल्लभ : संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2010 ई. पृ.92
4. हनुमान प्रसाद पोद्दार, अनु. श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम खण्ड (सचित्र हिन्दी, व्याख्या सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, पचासवाँ पुनर्मुद्रण, संवत् 2072, पृ. 306.
5. हनुमान प्रसाद पोद्दार, वही, पृ.311.
6. वही, पृ.843.
7. श्रीमद्भागवत महापुराण, द्वितीय खण्ड (सचित्र, हिन्दी व्याख्या सहित), गीता प्रेस, गोरखपुर, पच्चीसवां संवत् 2072, (10/21/9) पृ.266.
8. श्रीमद्भागवत महापुराण, द्वितीय खण्ड, वही (10/21/16), पृ. 269.
9. वही, (10/21/15), पृ.सं. 268–269.
10. हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रथम खण्ड, वही, पृ. 204.
11. श्रीमद्भागवत महापुराण, द्वितीय खण्ड वही, (10/86/52), पृ. 666.
12. वही, (11/8/5), पृ.763.
13. हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रथम खण्ड, वही, पृ.571.
14. वही, पृ.668.
15. वही, पृ.439.
16. श्रीमद्भागवत महापुराण, द्वितीय वही, (3/4/39), पृ.23.
17. वही, (12/12/59), पृ.977.
18. हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रथम खण्ड, वही, पृ.890.
19. श्रीमद्भागवत महापुराण, द्वितीय खण्ड वही, (11/12/42–43), पृ.786.
20. हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रथम खण्ड, वही, पृ. 889.
21. वही, पृ.465.
22. श्रीमद्भागवत महापुराण, द्वितीय खण्ड, वही, (11/3/23), पृ.725.